P: ISSN NO.: 2321-290X RNI : UPBIL/2013/55327 VOL-6* ISSUE-3* November- 2018
E: ISSN NO.: 2349-980X **Shrinkhla Ek Shodhparak Vaicharik Patrika**

भारतीय मूर्तिकला में भगवती सरस्वती

रीतिका गर्ग
असिस्टेंट प्रोफेसर,
चित्रकला विभाग,
राजस्थान विश्वविद्यालय,
जयपुर

सारांश

भारतीय कला के विभिन्न माध्यमों – स्थापत्य, मूर्ति एवं चित्र में भारतीय समाज का सामूहिक अनुभव एवं चिन्तन ही व्यक्त हुआ है। प्राचीन काल में तत्कालीन शासकों ने धर्म प्रचार हेतु कला को ही माध्यम बनाया। वैदिक काल से ही भगवती सरस्वती की आराधना नदी, देवी, माता और वाग्देवी (ज्ञान, वाणी की शक्ति) के रूप में की गई और उनकी मूर्तियों का भी निर्माण हुआ। देवी सरस्वती को वीणावादिनी के रूप में उनके वाहन हंस के साथ उत्कीर्ण किया गया। यद्यपि अनेक राजवंशों के शासन काल में बौद्ध, ब्राह्मण व जैन तीनों धर्मों की मूर्तियों का निर्माण हुआ तथापि हमें अनेक स्थानों पर देवी शारदा की मूर्तियाँ प्राप्त होती हैं। कुषाण, राष्ट्रकूट, परमार, चोल आदि अनेक शासकों के समय में देवी सरस्वती की प्रतिमाओं का निर्माण हुआ जिनके दर्शन हमें विभिन्न पुरातात्विक स्थलों, मन्दिरों एवं संग्रहालयों में होते हैं।

मुख्य शब्द : वैदिक, ऋग्वेद, वाग्देवी, भरतवंशियों, सप्तसिन्धव, पराकाष्ठा, अनिवार्च्या, कमलासन, ललितासन मुद्रा, अक्षमाला, कमण्डलु, त्रिवेणी, मूर्तिशिल्प, वाद्यवादन।

प्रस्तावना

कला और धर्म की अविराम धारा प्रवाहित करने वाली भारतीय संस्कृति अति प्राचीन है, जिसमें जीवन के सभी धार्मिक और लौकिक पक्षों को विस्तृत आयाम में रूपायित किया गया है। कला के विभिन्न माध्यमों–स्थापत्य, मूर्ति एवं चित्र में भारतीय समाज का सामूहिक अनुभव और चिन्तन ही व्यक्त हुआ है। भारतीय कला साधक ने अपनी तपस्या, लगन और क्रियाशीलता से जो कला–निधियाँ समाज को दी हैं, वे आज उच्च भारतीय संस्कृति की धरोहर हैं। जिस समय चित्रों और मूर्तियों का निर्माण हुआ, उस समय कला की उन्नति के साथ ही साहित्य तथा संस्कृति की भी सृष्टि हुई। तत्कालीन राजाओं ने धर्म प्रचार हेतु कला को ही माध्यम बनाया जिसके फलस्वरूप मूर्तिकला, चित्रकला, स्थापत्य आदि कलाओं का विकास हुआ। वैदिक युग में नारी को समाज में महत्वपूर्ण स्थान प्राप्त था। अतः कलाकार ने भी उसे सौन्दर्य, कोमलता और सत्य की एक प्रतिमा मानकर कला में प्रमुख स्थान दिया और उसके माध्यम से समाज के आदर्शों की अभिव्यक्ति की, जो आज उस युग की संस्कृति, सभ्यता एवं धार्मिक आदर्शों का प्रमाण है, जो नारी के महत्त्व की पराकाष्ठा को भी प्रमाणित करती है।

वैदिक साहित्य में सरस्वती नदी का उल्लेख नदी, देवी, माता और वाग्देवी (ज्ञान, वाणी की शक्ति) के रूप में किया गया है। सरस्वती भरतवंशियों की प्रिय नदी थी। ऋग्वेद के नदी सूक्त में ''सप्तसिंधव क्षेत्र की जिन सात नदियों का वर्णन मिलता है, उनमें सरस्वती और सिन्धु की स्तुतियाँ ही ज्यादा हैं।'' इस वर्णन से यह स्पष्ट हो जाता है कि भगवती सरस्वती की आराधना एक नदी और ज्ञान की देवी के रूप में प्रारम्भ से ही प्रचलित रही और जब धार्मिक प्रचार हेतु मूर्तिकला का निर्माण आरम्भ हुआ तो उन्हें मूर्तियों में भी वही स्थान प्राप्त हुआ जो उन्हें विभिन्न धार्मिक ग्रन्थों में प्राप्त था। इस परम्परा का निर्वाह करते हुए एक लम्बे समय तक देवी सरस्वती की मूर्तियों का निर्माण होता रहा।

गिरामाहुर्देवीं द्रुहिणगृहिणीमागम विदो
हरेः पत्नींपद्यां हर सहचरी मुद्रित नयाम्।
तुरीया कापि त्वं दुरधिगमनिस्सीम महिमा
महामायाविश्वं भ्रमयसि परब्रह्म महिषी।।

(सौन्दर्य लहरी–97)

अर्थात्, हे परब्रह्म महिषी! अम्बा!! आगमों को जानने वाले तुम्हें ब्रह्मा की पत्नी सरस्वती कहते हैं, तुम्हें ही विष्णु की पत्नी लक्ष्मी कहते हैं एवं तुम्हें ही हर (शंकर) की सहचरी पार्वती कहते हैं। तू इन सबसे परे या तुरीया, अनिवार्च्या,

अपार महिमावाली शुद्ध विद्यान्तर्गत माया तत्त्व हो, जो विश्व को भ्रमित करती हो।

साहित्यावलोकन

डॉ. मारूतिनन्दन तिवारी व डॉ. कमल गिरि, मध्यकालीन भारतीय मूर्तिकला, विश्वविद्यालय प्रकाशन, वाराणसी, 1991. इस पुस्तक में मध्यकालीन शासकों द्वारा निर्मित विभिन्न मूर्तियों का वर्णन मिलता है साथ ही बौद्ध, ब्राह्मण व जैन धर्मों की मूर्तियों का विशद वर्णन है।

डॉ. शशि झा, भारतीय चित्रकला और मूर्तिकला में नारी का स्वरूप, मानसी प्रकाशन, मेरठ, 1992. सम्बन्धित पुस्तक में कुछ स्थानों पर देवी सरस्वती की मूर्तियों की जानकारी प्राप्त होती है। इसके अतिरिक्त इस पुस्तक में नारी स्वरूप का विस्तृत वर्णन मिलता है।

डॉ. शुकदेव श्रोत्रिय, भारतीय कला–गौरव, चित्रायन प्रकाशन, मुजफ्फरनगर, 2003. सम्बन्धित पुस्तक भारतीय मूर्तिकला के ज्ञान का एक अच्छा स्त्रोत है। इसमें विभिन्न राजवंशों में निर्मित मूर्तिकला पर प्रकाश डाला गया है।

डॉ. ऊषा गोमे, पूर्वमध्यकालीन समाज में नारी, आर.बी.एस.ए. पब्लिशर्स, जयपुर, 2012. यह पुस्तक दो खण्डों में है। सम्बन्धित पुस्तक के माध्यम से पूर्व मध्यकालीन समाज में नारी की स्थिति तथा उसके जीवन का वर्णन प्राप्त होता है। तत्कालीन समाज में पूजित देवियों की जानकारी का भी यह एक उत्तम स्त्रोत है।

डॉ. रीतिका गर्ग, भारतीय कला और नारी, मानसी प्रकाशन, मेरठ, 2015. इस पुस्तक में विभिन्न भारतीय कला शैलियों में चित्रित नारी स्वरूप पर प्रकाश डाला गया है साथ ही नारी चित्रण परम्परा का वर्णन भी मिलता है।

अध्ययन का उद्देश्य

भगवती सरस्वती को ज्ञान ज्योति विस्तारक, वीणा की झंकार, नारी की सौम्यता, पवित्रता की प्रतीक एवं माँ की विराटता को अपने में समाहित करने वाली ''देवी'' के नाना रूपों में कल्पित किया गया है। 'माँ शारदे' के इस स्वरूप को जन–जन तक पल्लिवत –पुष्पित करने हेतु तात्कालिक शासको ने मूर्तियों का निर्माण करवाया। आज कला साधक, शोधार्थी, विद्वतजन एवं आमजन इससे लाभान्वित हो रहा है। यह शोधपत्र भी माँ शारदे (भगवती) की समग्रता को समेटने का एक कतिपय प्रयास है।

देवी सरस्वती का स्वरूप

धार्मिक और पौराणिक मान्यताओं के अनुसार विद्या, ज्ञान एवं संगीत की अधिष्ठात्री देवी सरस्वती की गणना भी हिन्दू धर्म की प्रमुख देवियों में की गयी है। समस्त संसार को अपने ज्ञान से प्रकाशित करने वाली वीणावादिनी देवी सरस्वती का सभी कलाकारों के हृदय में सदैव से ही विशेष स्थान रहा है। इस कारण सभी कलाओं में उनके स्वरूप का विस्तृत वर्णन किया गया है। अधिकांशतः विद्यादायिनी सरस्वती को कमलासन, ललितासन मुद्रा में वीणा बजाते हुए चित्रित किया जाता है। विष्णुधर्मोत्तर पुराण के अनुसार चतुर्भजी देवी के हाथों में वीणा, पुस्तक, अक्षमाला तथा कमण्डलु रहते हैं।[1] देवी सरस्वती के वाहन के रूप में हंस का चित्रण देखने को मिलता है – जो विभिन्न प्रतीक लिये है। हंस को नीर–क्षीर विवेकी माना गया है। यह ज्ञान की निर्मलता का प्रतीक है। श्वेत वर्ण के कारण हंस आत्मा की निर्मलता का प्रतीक है। स्वभावतः आकाशचारी होने के कारण हंस ऊर्ध्व गति का भी प्रतीक है।[2] साहित्य में इन्हें वाक्, वाग्देवी, भारती, वाणी और वागेश्वरी इत्यादि शब्दों से सम्बोधित किया गया है। वस्तुतः यह सरस्वती देवी हिन्दू, बौद्ध एवं जैन धर्म के अनुयायियों की आराध्य देवी के रूप में प्रसिद्ध रही हैं। लेकिन हिन्दू धर्म में सरस्वती का स्थान सर्वोपरि रहा है।[3]

मूर्तिशिल्प में सरस्वती

कुषाण काल में जहाँ एक ओर बौद्ध धर्म सम्बन्धी मूर्तियों का निर्माण हुआ वहीं दूसरी ओर ब्राह्मण धर्म सम्बन्धी मूर्तियों में भगवती सरस्वती की मूर्तियाँ भी निर्मित हुईं। बादामी की गुफा संख्या दो के बाहर बने बरामदे के एक खम्भे पर दो नारी आकृतियाँ अंकित हैं – एक वीणा बजा रही है और दूसरी अपने हाथ में पात्र लिये हुए है जो लक्ष्मी और सरस्वती जान पड़ती हैं। एहोली के बरामदे में बने स्तम्भ पर ब्रह्मा दो नारियों के साथ हैं जिनमें से दाहिनी वाली सरस्वती है। बड़ी विचित्र मुद्रा में हैं बायाँ पैर आसन के ऊपर और दाहिना मुड़ा हुआ है। दाहिने पैर के घुटने पर अपना हाथ आराम की मुद्रा में रखा है। मुख ऊपर की ओर किये हुए हैं। बायाँ हाथ ब्रह्मा की जंघा पर है।[4]

राष्ट्रकूट कला के अन्तर्गत निर्मित ऐलोरा गुफाओं में भी देवी सरस्वती की मूर्तियों का निर्माण हुआ। ऐलोरा के सर्वप्रसिद्ध कैलाश मन्दिर (गुफा संख्या–16) में प्रवेश द्वार के पूर्व बाहर की ओर गंगा, यमुना और सरस्वती की मूर्तियाँ हैं जो क्रमशः पवित्रता, ज्ञान और भक्ति के संगम की एक सौम्य अभिव्यक्ति प्रस्तुत करती हैं। धूमरलेण या सीता की नहानी (गुफा संख्या–29) में अन्य देवी–देवताओं की मूर्तियों के साथ ही सरस्वती की प्रतिमा भी प्रतिष्ठित है। राष्ट्रकूट काल में ही बने ऐलीफैण्टा के प्रमुख मूर्तिशिल्पों में भी देवी सरस्वती की मूर्तियों का निर्माण हुआ। गंगाधर शिव की प्रसिद्ध मूर्ति में शिव के सिर के ऊपर बनी त्रिमुखी स्त्री–आकृति गंगा–यमुना–सरस्वती की त्रिवेणी का ही संकेत है।

ब्रह्मा की शक्ति सरस्वती का परमारकालीन समाज में भी विशेष महत्त्व था अतएव परमार शासकों के अनेक अभिलेखों में देवी का उल्लेख हुआ है और यही कारण है कि प्रसिद्ध परमार शासक भोज ने वाग्देवी (सरस्वती) की मूर्ति का निर्माण (1034 ई.) करवाया तथा उस देवी प्रतिमा को धार स्थित भोजशाला में अधिष्ठात्री देवी के रूप में प्रतिष्ठित किया। यह प्रतिमा वर्तमान में ब्रिटिश संग्रहालय, लन्दन में सुरक्षित है। प्रतिमा पर उत्कीर्ण लेख से ज्ञात होता है कि लोगों में यह धारणा विद्यमान थी कि वाग्देवी की मूर्ति का निर्माण कराने व पूजा करने से सभी मनोरथ पूर्ण होते हैं।[5] सरस्वती को शारदा भी कहा गया है। मध्य–प्रदेश के मैहर (जिला सतना) में आल्हा द्वारा निर्मित शारदा देवी का मन्दिर (9वीं–10वीं शताब्दी) प्रसिद्ध है, जिसमें हंस पर स्थित शारदा देवी की चतुर्भुजी प्रतिमा स्थापित है, जिसका एक हाथ खण्डित हो चुका है तथा दूसरे में पुस्तक और अन्य

दो हाथों में वीणा धारण किये हुए हैं। मन्दिर के बाहर एक अभिलेख है जो 'ॐ नमः सरस्वते' से प्रारम्भ होता है।[6] इनके अतिरिक्त विवेच्यकालीन मध्य भारत में भी सरस्वती देवी की अनेक मूर्तियाँ प्राप्त हुई हैं, जिनमें सर्वाधिक प्रसिद्ध प्रतिमा परमार कालीन वाग्देवी की मूर्ति है। 11वीं–12वीं शताब्दी में भी देवी की अनेक मूर्तियाँ प्राप्त हुई जो वर्तमान समय में इन्दौर, धुबेला आदि केन्द्रिय संग्रहालयों में संग्रहित हैं। इनमें सामान्यतः देवी सरस्वती को ललितासन मुद्रा में तथा वीणा बजाते हुए उत्कीर्ण किया गया है। खजुराहों में भी चतुर्भुजी सरस्वती की एक इसी प्रकार की प्रतिमा उत्कीर्ण है, जिनके एक हाथ में पुस्तक, दूसरे में कमल तथा अन्य दो हाथों में वीणा धारण की हुई है। कारीतलाई से भी कलचुरिकालीन देवी सरस्वती की वस्त्राभूषणों से सुसज्जित चतुर्भुजी मूर्ति प्राप्त हुई है जो ललितासन मुद्रा में शिल्पांकित है। इसी प्रकार कलचुरि साम्राज्य में रीवा महल के तोरण द्वार पर भी सरस्वती को वीणावादिनी के रूप में प्रदर्शित किया गया है।[7]

नृत्यरत सरस्वती

चोल कला के (लगभग 8वीं–1270 ई.) अन्तर्गत गंगैकोण्डचोलपुरम के बृहदीश्वर मन्दिर की उत्कृष्टतम मूर्तियों में भगवती सरस्वती की प्रतिमा भी निर्मित है। होयसल मूर्तिकला (1100–1291 ई.) में हेलेविद के होयसलेश्वर मन्दिर पर नृत्यरत सरस्वती की मूर्ति में दाहिना पैर नृत्य की मुद्रा में ऊपर उठा है तथा ऊपर के दोनों हाथ नटराज मूर्तियों के समान नृत्य की मुद्रा (गज हस्त मुद्रा) में हैं। सरस्वती के दो अन्य हाथों में अक्षमाला और पुस्तक हैं। देवी के चरणों के पास हंसवाहन तथा दोनों पश्वों में नगाड़ा तथा मंजीरावादकों की वाद्यवादन करती हुई आकृतियाँ सरस्वती की नृत्य की लयात्मकता के अनुरूप तरंगमय दिखायी गयी हैं।[8] इसी प्रकार सेन वंश के अन्तर्गत निर्मित मूर्तियों में भी सरस्वती की प्रतिमा का निर्माण हुआ है। बंगाल से प्राप्त 12वीं शती में निर्मित विष्णु की प्रतिमा में उनके साथ लक्ष्मी और सरस्वती उत्कीर्ण हैं। यह प्रतिमा भारत कला भवन, वाराणसी में संग्रहित है। गुर्जर–प्रतिहार कला में भी भगवान विष्णु की मूर्ति के साथ देवी लक्ष्मी और सरस्वती का भी अंकन है।

परमार काल की मूर्तिकला में हिंगलाजगढ़ तथा कुछ अन्य स्थलों के अतिरिक्त उज्जैन, गन्धावल, धार, गुना, विदिशा जैसे स्थलों से भी अन्य मूर्तियों के साथ सरस्वती की मूर्तियाँ भी प्राप्त हुई हैं। चाहमान मूर्ति कला के उत्कृष्टतम उदाहरण के रूप में बीकानेर स्थित पल्लू ग्राम से प्राप्त समान लक्षणों वाली संगमरमर में बनी लगभग 1050 ई. की सरस्वती की दो जैन मूर्तियाँ जो क्रमशः राष्ट्रीय संग्रहालय, दिल्ली और गंगा गोल्डेन जुबिली संग्रहालय, बीकानेर में सुरक्षित हैं। इन ओजपूर्ण मूर्तियों में अत्यन्त सूक्ष्मता से काटकर धातुशिल्प की शैली में बनाये गये आभूषणों से सज्जित देवी त्रिभंग मुद्रा में खड़ी हैं। चतुर्भुजा देवी के मुख का सौम्य भाव तथा हाथों के आयुध स्पष्टतः उनके विद्या की देवी होने का भाव व्यक्त करते हैं। वीणावादिकाओं की आकृतियों से वेष्टित सरस्वती के हाथों में वरदाक्ष, पद्म, पुस्तक और कमण्डलु हैं। देवी की अंगरचना में नारीसुलभ सौन्दर्य और मृदुता दृष्टव्य है।[9] सरस्वती की ये दोनों मूर्तियाँ न केवल चाहमान वरन् भारतीय कला की श्रेष्ठतम कृतियाँ हैं।

निष्कर्ष

इन सभी उदाहरणों से यह स्पष्ट होता है कि भगवती सरस्वती की आराधना न केवल ज्ञान व विद्या की देवी के रूप में हुई अपितु उन्हें जल की देवी के रूप में भी वन्दित किया गया। जहाँ एक ओर उन्हें सम्पूर्ण अंधकार को नष्ट कर ज्ञान का दीपक जलाने वाली कहा गया वहीं दूसरी ओर उनकी वीणा के मधुर स्वरों से निकलते हुए संगीत ने भी कला को इस संसार में एक उच्च स्थान दिलाया। एक नारी के रूप में उनकी सौम्यता, मधुरता एवं पवित्रता ने विद्वतजनों के हृदय में एक नवीन जीवन का संचार किया तभी तो उन्हें माता कहकर माँ शारदा रूप से उनका पूजन किया गया। भगवती सरस्वती की मूर्तियों का निर्माण करवाकर तत्कालीन शासकों ने स्वयं को धन्य माना तथा उनके स्वरूप को जन–जन तक पहुँचाने का प्रयास भी किया।

संदर्भ ग्रंथ सूची

1. *गर्ग, डॉ. रीतिका, भारतीय कला और नारी, मानसी प्रकाशन, मेरठ, 2015, पृष्ठ सं. 81.*
2. *अग्रवाल, डॉ. गिर्राज किशोर, कला समीक्षा, देवऋषि प्रकाशन, अलीगढ़, 1970, पृष्ठ सं. 128.*
3. *गोमे, डॉ. ऊषा, पूर्वमध्यकालीन समाज में नारी (प्रथम भाग), आर.बी.एस.ए. पब्लिशर्स, जयपुर, 2012, पृष्ठ सं. 191.*
4. *झा, डॉ. शशि, भारतीय चित्रकला और मूर्तिकला में नारी का स्वरूप, मानसी प्रकाशन, मेरठ, 1992, पृष्ठ सं. 46.*
5. *गोमे, डॉ. ऊषा, पूर्वमध्यकालीन समाज में नारी (प्रथम भाग), आर.बी.एस.ए. पब्लिशर्स, जयपुर, 2012, पृष्ठ सं. 192.*
6. *आर्के. सर्वे इण्डिया, जिल्द–9, पृष्ठ सं. 33, प्राचीन भारत में नारी, पृष्ठ सं. 173.*
7. *गोमे, डॉ. ऊषा, पूर्व मध्यकालीन समाज में नारी (प्रथम भाग), आर.बी.एस.ए. पब्लिशर्स, जयपुर, 2012, पृष्ठ सं. 192.*
8. *तिवारी, डॉ. मारूतिनन्दन व गिरि, डॉ. कमल, मध्यकालीन भारतीय मूर्तिकला, विश्वविद्यालय प्रकाशन, वाराणसी, 1991, पृष्ठ सं. 86.*
9. *तिवारी, डॉ. मारूतिनन्दन व गिरि, डॉ. कमल, वही, पृष्ठ सं. 136.*